जाकर) ज्ञानी योगियों के कुल में ही जन्म लेता है। ऐसा जन्म इस संसार में निःसन्देह अति दुर्लभ है।।४२।।

तात्पर्य

इस श्लोक में ज्ञानवान् योगियों के कुल में जन्म की प्रशंसा की गई है, क्योंकि ऐसे कुल में उत्पन्न बालक को जीवन के प्रारम्भ से ही भागवत-शिक्षा का संस्कार अनायास प्राप्त हो जाता है। 'आचार्य' अथवा 'गोस्वामी' कुलों में विशेष रूप से यह परिपाटी रही है। परम्परा और प्रशिक्षण के कारण ऐसे कुल विद्या तथा भक्तिभाव में अत्यन्त समृद्ध होते थे, इसी कारण उन्हें गुरुपद प्राप्त था। किन्तु विद्या एवं प्रशिक्षण के अभाव में अब वे प्रायः भ्रष्ट हो गये हैं। भगवत्कृपा से आज भी ऐसे कुल विद्यमान हैं, जिनकी पीढ़ी-पीढ़ी में योगी उत्पन्न होते हैं। इन कुलों में जन्म होना निःसन्देह सौभाग्यसूचक है। सौभाग्यवश, हमारे गुरुदेव ओम् विष्णुपाद परमहंस श्री श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज का और हमारा भी जन्म ऐसे ही सत्कुलों में हुआ। इस प्रकार भगवत्कृपा के फलस्वरूप हम दोनों को जीवन के आदिकाल से भगवद्भक्ति की शिक्षा प्राप्त हुई। बाद में, दिव्य शिष्यपरम्परा के अनुसार हमारा मिलन हो गया।

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन।।४३।।

तत्र=वहाँ; **तम्**=उस; **बुद्धिसंयोगम्**=बुद्धियोग को; **लभते**=फिर से प्राप्त हो जाता है; **पौर्व**=पहले; **देहिकम्**=शरीर के; **यतते**=साधन करता है; **च**=तथा; **ततः**=उससे; **भूयः**=फिर **संसिद्धौ**=संसिद्धि के लिए; **कुरुनन्दन**=हे कुरुपुत्र अर्जुन।

अनुवाद

हे अर्जुन ! उस देह में वह जन्मान्तर के बुद्धियोग को फिर प्राप्त हो जाता है और इस प्रकार योगयुक्त होकर पूर्ण सिद्धि के लिए आगे साधन करता है।।४३।।

तात्पर्य

राजा भरत, जिन्हें योगभ्रष्ट हो जाने पर तीसरा जन्म श्रेष्ठ ब्राह्मण-कुल में मिला था, इस सत्य के प्रतीक हैं कि योगभ्रष्ट पुरुष का जन्म ऐसे सत्कुल में होता है, जहाँ पूर्व शरीर का बुद्धियोग उसे फिर से प्राप्त हो जाय। भरत सम्पूर्ण विश्व के सार्वभौम सम्राट् थे। उन्हीं के समय से यह लोक देवताओं में भारतवर्ष के नाम से विख्यात है। उनसे पूर्व इसे इलावर्त वर्ष कहा जाता था। महामहिम सम्राट् ने भगवत्प्राप्ति के लिए अल्प आयु में ही संन्यास ले लिया, परन्तु सफल नहीं हो सके। मृग बनना पड़ा। फिर अगले जन्म में श्रेष्ठ ब्राह्मणकुल में उत्पन्न हुए। वहाँ उनका नाम जड़भरत हुआ; वे किसी से भी वार्तालाप किये बिना नित्य एकान्तसेवन किया करते थे। यथासमय राजा रहूगण को परम योगी के रूप में उनका साक्षात्कार हुआ। उनके चरित्र से सिद्ध होता है कि भगवत्प्राप्ति के लिये किया गया साधन अथवा योगाभ्यास कभी व्यर्थ नहीं